

अद्यतन समय में स्वास्थ्य सेवा प्रणाली में आयुर्वेद की भूमिका

डॉ. प्रसून सेनगुप्त

Post-Doctoral fellow, Tripura University (A Central University)

सारांश

आयुर्वेद के अनुसार दिनचर्या का अर्थ है एक आदर्श दैनिक दिनचर्या, जो मानव शरीर और मन के लिए लाभकारी शारीरिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव प्रदान करती है। इसे आदर्श इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह शरीर के दोषों, धातुओं और मल के बीच संतुलन स्थापित करती है, पाचन शक्ति बढ़ाती है, मन, आत्मा और इंद्रियों को सुखदायक बनाती है और रोगमुक्त दीर्घायु प्रदान करती है। सुश्रुत आचार्य ने स्वास्थ्य को इसी प्रकार परिभाषित किया है। इस आदर्शवाद को आयुर्वेद के वैचारिक औचित्य के माध्यम से भी समझना आवश्यक है। दिनचर्या में ब्रह्म मुहूर्त (सूर्योदय से 45 मिनट पहले) में जागना, दांत साफ करना (दंतधावन), जीभ साफ करना (जिह्वा-निलेखन), कोरिलियम लगाना (अंजन), नाक में नथनी डालना (नस्य), तेल निकालना (कवल), औषधीय गरारे करना (गंडूष), तेल मालिश (अभ्यंग), व्यायाम (व्यायाम), पाउडर मालिश (उद्वर्तन), स्नान, सही आचरण (सद्गुण) और भोजन (भोजन संबंधी नियम) आदि शामिल हैं। इनकी अनदेखी करने से गैर-संक्रामक रोगों, अज्ञात कारणों से होने वाले रोगों और जीवनशैली से प्रेरित रोगों जैसे उच्च रक्तचाप, मधुमेह, हृदय रोग आदि का अनुपात बढ़ गया है। उच्च रक्तचाप रोधी दवाएं, मधुमेह रोधी दवाएं, रक्त पतला करने वाली दवाएं आदि जैसे उपचार विकल्प महंगे हैं और इनके दुष्प्रभाव भी होते हैं। साथ ही, आजीवन दवा लेने के डर से लोग आक्रामक उपचार विधियों को प्राथमिकता देते हैं। इससे जीवन की गुणवत्ता में गिरावट आ रही है। 'आदर्श' शब्द की वैचारिक और व्यावहारिक खोजपूर्ण समझ और दिनचर्या के नियमों के साथ इसका प्रयोग, आज की आबादी में उपरोक्त रोगों की रोकथाम के लिए उपयुक्त रूप से किया जा सकता है। उद्देश्य- आदर्श दिनचर्या का पालन करके स्वास्थ्य रखरखाव और रोग निवारण प्राप्त करना। लक्ष्य- किसी दिनचर्या की आदर्शता के वैचारिक तर्क को समझना और आदर्श दिनचर्या के तरीकों का पता लगाना तथा अद्यतन शोधों के माध्यम से उनकी उपयोगिता को सिद्ध करना। सामग्री और विधियाँ- गूगल स्कॉलर, पबमेड, स्कोपस आदि से डेटा एकत्र करना और उसका विश्लेषण करना। परिणाम- ब्रह्म मुहूर्त में जागने के 30 मिनट बाद कोर्टिसोल हार्मोन अपने चरम पर होता है, जो तनाव-रोधी गतिविधि, प्रतिरक्षा-संशोधन और चयापचय वृद्धि के लिए जिम्मेदार होता है। कवल/गंडूष प्लाक, मसूड़ों के स्कोर और बैक्टीरिया की संख्या को कम करता है। अभ्यंग ट्रिग्लेसिन और सेरोटोनिन के स्तर पर क्रिया करके सर्कैडियन लय को सामान्य करता है। व्यायाम-अध्ययनों से पता चलता है कि यह अल्जाइमर रोग में प्रभावी है, उच्च रक्तचाप के रोगियों में रक्तचाप कम करता है, टाइप-2 मधुमेह के रोगियों में HbA1C कम करता है और हृदय रोगों को कम करता है। नस्य ने ऊपरी श्वसन पथ के संक्रमण (URTI) और इससे संबंधित गंभीर लक्षणों (जैसे कोविड-19) की रोकथाम में मदद की है।

मुख्य शब्द- दिनचर्या, गैर-संक्रामक रोग, संक्रामक रोग, मधुमेह, उच्च रक्तचाप

Published: 30 June 2026

DOI: <https://doi.org/10.70558/SPIJSH.2026.v3.i6.45823>

Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0).

भूमिका-

आधुनिक भारतीय समाज में स्वास्थ्य को लेकर सामाजिक जागरूकता का अभाव सहज ही सर्वत्र परिलक्षित होता है। ऐसे परिस्थिति में मनुष्य को जागरूक करने के लिए आयुर्वेद औषधि सबकी दृष्टि में एकमात्र मूल उपचार है। आयुर्वेद सभी प्रकार के रोगों के उपचार का भण्डार है। सुश्रुत संहिता में स्वास्थ्य का अर्थ बताते हुए कहा गया है कि ऐसे स्वास्थ्य की अवस्था जिसमें मनुष्य शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक सभी आयामों में संतुलित एवं पूर्ण रूप से विकसित हो, यह केवल रोग न होने की स्थिति नहीं है, बल्कि जीवन के सभी पक्षों में सामंजस्य और सकारात्मकता की अवस्था बनी रहे। एक मनुष्य का शरीर किस प्रकार समग्र रूप से स्वस्थ और निरोगी रह सकता है, यह चर्चा आयुर्वेद में सम्यक प्रकार से की गई है। आयुर्वेद में स्वास्थ्य को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥¹

अर्थात् जिस व्यक्ति के शरीर में वात, पित्त, कफ संतुलित हो, पाचन अग्नि संतुलित हो, सप्त धातुएँ- रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और मल-मूत्र, विष्टा, स्वेद की क्रियाएँ व्यवस्थित हों तथा आत्मा, मन और इन्द्रियाँ प्रसन्न हों वही व्यक्ति स्वस्थ कहलाता है।

"कुमारसम्भवम्"में उद्धृत प्रसिद्ध पंक्ति"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"² में यह विचार प्रतिपादित है कि तप, अनुष्ठान और सदाचार के लिए पहले शरीर का सुस्थिर होना आवश्यक है। व्यक्ति के सभी नैतिक, धार्मिक और सामाजिक कर्तव्य तभी फलित होते हैं जब देह स्वस्थ व सक्षम हो, इसलिए देह-संरक्षण प्रथम दायित्व है।

आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धतियाँ आधुनिक युग में भी प्रासंगिक हैं, क्योंकि वे स्वस्थ भोजन, जीवनशैली, और व्यवहार के माध्यम से जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाने का प्रयास करती हैं। इस प्रकार आयुर्वेद एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है जो केवल शारीरिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक कल्याण को भी महत्वपूर्ण बनाता है। प्रस्तुत शोध आलेख में "आयुर्वेद और समग्र स्वास्थ्य अभ्यास आधुनिक स्वास्थ्य सेवा प्रणाली में भूमिका"के सन्दर्भ में सारगर्भित विश्लेषण तथा दिनचार्य विस्तार रूप में प्रस्तुत किया जाएगा।

1. आयुर्वेद दर्शन की भूमिका -

प्रत्येक दर्शन के सामान्यतः दो मुख्य प्रतिपाद्य विषय होते हैं सृष्टि विज्ञान और अध्यात्म। अन्य भारतीय दर्शनों (जैसे सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा) का प्रमुख लक्ष्य मोक्ष या आत्मिक मुक्ति प्राप्त करना होता है अर्थात् अध्यात्म-प्रधान। इसके विपरीत, आयुर्वेद दर्शन का केंद्रीय विषय मोक्ष की अपेक्षा भाव, स्वभाव, आयु, पुरुष, और रोग जैसे सृष्टि विज्ञान संबंधी विषयों पर अधिक केंद्रित है। संसार के समस्त भावों और उनके स्वभावों के विशिष्ट प्रकार के वर्गीकरण के कारण, आयुर्वेद अपना पृथक अस्तित्व रखता है। यह तर्क दिया जाता है कि भारतीय आर्य सृष्टि विज्ञान की दृष्टि से आयुर्वेद एक सम्मत सृष्टि विज्ञान है, जिसे स्वीकार करना उचित है।

¹ सुश्रुत संहिता, सूत्र स्थान, अध्याय-15, श्लोक- 48, पृष्ठ- 84

² कुमारसम्भवम् अध्याय-5, श्लोक - 33

आयुर्वेद का पूरा तंत्र चिकित्सा और निदान उसके विशिष्ट दार्शनिक सिद्धांतों पर ही अवलंबित है। और इन्हीं सिद्धांतों का यथावत् वर्णन आयुर्वेद दर्शन में किया जाता है।

2. आधुनिक दिनचर्या -

अष्टाङ्गहृदयम् में भी स्वास्थ्य-रक्षण के लिए विधिवत दैनिक दिनचर्या बताई गई है। और उसी क्रम का आरम्भ ब्राह्ममुहूर्त में उठने के निर्देश से होता है। कि ब्राह्ममुहूर्त में उठना चाहिए-

"ब्राह्मे मुहूर्त उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः"³

अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति को अपनी आयु की रक्षा के लिए प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में उठना चाहिये। इस आयु तन्त्र में आयु की रक्षा करना मुख्य उद्देश्य है। यह उद्देश्य स्वस्थ तथा रोगी दोनों को पालन करने से सिद्ध होता है। परन्तु आधुनिक समय में लोग कार्य व्यस्तता के कारण शास्त्र में वर्णित दैनिक दिनचर्या का पालन करने में असमर्थ हो रहे हैं। जिससे आज के दिन लोगों को बहुत अधिक शारीरिक रोगों का सामना करना पड़ता है। और जब कोई अन्य औषधि से रोगों को नष्ट नहीं कर पाते हैं फिर आयुर्वेद की ओर लौटते हैं।

सुबह जल्दी उठना ब्रह्म मुहूर्त सूर्योदय से एक डेढ़ घंटा पहले जागना आदर्श माना जाता है क्योंकि उस समय वात दोष प्रबल होता है और शरीर ऊर्जा से भर जाता है। सुबह एक-दो गिलास गुनगुना शुद्ध जल पीना मूत्राशय को साफ करता है और पाचन क्रिया को सुधारता है। स्वच्छता के उपाय मलोत्सर्ग, दन्तधावन, नाक में औषधि डालना, गण्डूष करना शरीर के दोषों को नियंत्रण में रखता है। योग एवं प्राणायाम मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए नियमित योगाभ्यास आवश्यक है। दिनचर्या में ध्यान और योगनिद्रा में समय देना तनाव कम करने में सहायता करता है। सचेत भोजन समय पर खाना और पाचन शक्ति के अनुकूल रखना, दिन का मुख्य भोजन दोपहर 12 से 1 बजे के बीच करना महत्त्वपूर्ण है।

आयुर्वेद दर्शन में दिनचर्या केवल व्यक्तिगत स्वच्छता का एक संग्रह मात्र नहीं है, बल्कि एक अत्यंत व्यवस्थित, जीवन-संरक्षक सिद्धांत है, जिसका उद्देश्य शरीर, मन और आत्मा के बीच संतुलन स्थापित करना है। अष्टाङ्गहृदयम् जैसे मूल ग्रंथों में इसे सूत्रस्थान के द्वितीय अध्याय के रूप में वर्णित किया गया है, जो आयुर्वेद के मूलभूत उद्देश्यों धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति के लिए दीर्घायु के पोषण को सुनिश्चित करता है। दिनचर्या के मुख्य घटकों और उनके दार्शनिक महत्त्व का विस्तृत विवेचन शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित है-

i. ब्रह्ममुहूर्त में जागरण (Waking at Brahma Muhurta), ii. दन्तधावन (Tooth Cleaning) और जिह्वा लेहन, iii. अंजन प्रयोग (Application of Collyrium), iv. अभ्यंग (Oil Massage) और शिरोभ्यंग, v. व्यायाम (Exercise), vi. स्नान (Bathing), जल का प्रयोग गर्म जल से स्नान करने पर बल की वृद्धि होती है, किन्तु सिर पर गर्म जल डालना उचित नहीं माना जाता है। इस प्रकार, आयुर्वेद की दिनचर्या केवल दैनिक क्रियाओं का लेखा-जोखा नहीं है, बल्कि एक व्यापक दार्शनिक संरचना है जो मानव जीवन को धर्म, अर्थ और काम के माध्यम से मोक्ष की ओर अग्रसर करने के लिए शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का पोषण करती है।

3. त्रिविध दोष -

आयुर्वेद शरीर क्रिया विज्ञान में त्रिविध दोष को बाहरी शक्ति नहीं माना है अपितु यह त्रिविध दोष पंचमहाभूतों के

³ अष्टाङ्गहृदयम्, पृष्ठ- 28

विशिष्ट संयोग से उत्पन्न हो कर गतिशील रूप में शरीर अवस्थित होते हैं। पंचमहाभूत स्थिर और भौतिक शरीर प्रदान करते हैं। जबकि वात, पित्त और कफ ये तीन दोष शरीर के उनकी कार्यात्मक अभिव्यक्ति हैं। आयुर्वेद में उक्त त्रिविध दोष शरीर की सभी क्रियाओं का संचालन करते हुए पोषण करते हैं। यद्यपि ये पूरे शरीर में व्याप्त हैं विशेष रूप से वात नाभि के नीचे, पित्त नाभि और हृदय के बीच तथा कफ हृदय से ऊपर वाले भाग में रहता है। श्रीमदवाग्भट्ट जी अष्टांगहृदयम् में त्रिदोष का परिभाषा बताते हैं -

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः।⁴

अर्थात् दोष से तात्पर्य दूषित करने वाली वस्तु से है। ये वायु पित्त तथा कफ ही शरीर को दूषित करने के मूल कारण हैं जो दोष-हेतु या कारण शब्द कहलाते हैं। 'दूषयन्ति इति दोषाः' अर्थात् वात, पित्त एवं कफ शरीर को दूषित करते हैं इसलिए इन्हें दोष कहा गया है।

वातदोष- आचार्य वाग्भट्ट वातदोष का लक्षण बताते हैं रुक्ष (सूखी), लघु (हल्की), शीत (ठंडी), खर (कठोर), सूक्ष्म (बारीक), और गति (चलायमान) गुण वाली होती है- तत्र रुक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः।⁵ यद्यपि वात दोष सम्पूर्ण शरीर में विद्यमान है तथापि वात दोष के स्थान में आचार्यों ने अनेक स्थानों पर वात के विशिष्ट कर्मों के कारण उनका उल्लेख किया है। शरीर में वात दोष का स्थान पक्वाशय में बताया जाता है। वातदोष का कार्य और स्थान के भेद देख कर पाँच वर्गों में विभाजन है- प्राणवायु, अपानवायु, व्यानवायु, उदानवायु, समानवायु।

पित्तदोष:- त्रिविध दोषों में पित्त दोष द्वितीय दोष है। इसका निर्माण तेज एवं जल महाभूत के संयोग से हुई है। पित्त का विशिष्ट स्थान आमाशय स्वीकार किया है। पित्त की उत्पत्ति में अग्नि और जल महाभूतों की प्रधानता होती है। जिसके कारण यह आग्नेय माना जाता है। पित्त दोष के विशिष्ट गुण इसे शरीर में ऊर्जा और पाचन का मुख्य आधार बनाते हैं। आचार्य चरक पित्त दोष का लक्षण बताते हैं-

सस्नेहमुष्णं तीक्ष्णं च द्रवमम्लं सरं कटु।

विपरीतगुणैः पित्तं द्रव्यैराशु प्रशाम्यति॥⁶

अर्थात् ईषत् स्निग्ध (थोड़ा चिकना), तीक्ष्ण (तेज), उष्ण (गर्म), लघु (हल्का), विस्त्र (मृत् शरीर जैसी गंध), सर (चलने वाला), और द्रव (पतला) होता है। पित्त का लक्षण ईषत् स्नेहयुक्त, गरम, तीक्ष्ण, द्रव, अम्ल, सर और कटु गुण युक्त होता है। ईषत् स्निग्ध- यह थोड़ा चिकना होता है। तीक्ष्ण यह तीव्र या तीखा होता है, उष्ण यह गर्म होता है, लघु यह पचने में हल्का या लघु होता है। विस्त्र इसमें शव को जलाने से पहले जैसी गंध आती है। सर यह चलने वाला या गतिशील होता है। द्रव यह पतला या द्रव रूप में होता है। इनसे विपरीत गुण वाले द्रव्यों के प्रयोग से पित्त का शमन होता है। गरम तासीर वाली वस्तुओं का सेवन, अत्यधिक व्यायाम, और तेज धूप में रहना पित्त प्रकृति के व्यक्तियों के लिए हानिकर होता है, क्योंकि ये पित्त को बढ़ाते हैं। पित्त दोष को शरीर से बाहर निकालने के लिए विरेचन सर्वोपरि माना गया है।

पित्त शमन के लिए तिक्त रस से सिद्ध घृत का सेवन भी हितकर होता है। पित्त दोष को नियंत्रित करने के लिए इसके विपरीत गुणों (शीत, मृदु, मधुर) वाले द्रव्यों और विधियों का प्रयोग किया जाता है। पित्त की विकृति से

⁴ अष्टांगहृदयम्, सूत्रस्थानम्, प्रथम अध्याय- 6

⁵ अष्टांगहृदयम्, सूत्रस्थानम्, प्रथम अध्याय 11

⁶ च. सं. सू. 1/60

उत्पन्न घाव में गर्मी, जलन, पाक और दुर्गंध होती है। यदि मल-मूत्रादि के वेग को जबरदस्ती रोका जाता है, तो कुपित वायु पित्त को भी दूषित कर देती है, जिससे हृदय रोग और उदर रोग आदि होते हैं।

कफदोषः -

आयुर्वेद दर्शन के त्रिदोष सिद्धांत में कफ दोष शरीर को स्थिरता, स्नेह और पोषण प्रदान करने वाली मूलभूत शक्ति है। यह जल और पृथ्वी महाभूतों की प्रधानता वाला माना गया है, जिसके कारण यह शीतलता, भारीपन और दृढ़ता जैसे गुणों से युक्त होता है। चरकसंहिता में पित्त दोष का लक्षण बताते हैं-

गुरुशीतमृदुस्निग्धमधुरस्थिरपिच्छिलाः।

श्लेष्मणः प्रशमं यान्ति विपरीतगुणैर्गुणाः॥⁷

अर्थात् कफ का लक्षण सूत्र गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, मधुर, स्थिर और पिच्छिल गुण वाला कफ होता है। इन गुणों से विपरीत गुण वाले द्रव्यों से कफ का शमन होता है। लघु और रुक्ष आहार द्रव्यों का प्रयोग, व्यायाम और उबटन/मालिश द्वारा बढ़े हुए कफ पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। कफ प्रकृति के व्यक्तियों को भारी और चिकनाई युक्त वस्तुओं के खान-पान से बचना चाहिए। दोषों को लंघन (उपवास) और पाचन (पचाने वाली औषधि) के द्वारा शांत किया जा सकता है, किन्तु संशोधन (वमन/विरेचन) द्वारा शुद्ध किए गए दोषों की उत्पत्ति पुनः नहीं होती है। तीव्र वमन और नस्य क्रिया द्वारा कफ को दूर करने से वसंत ऋतु में होने वाले कफजन्य रोगों से बचा जा सकता है-

ऋतुओं के अनुसार दोषों का संचय, प्रकोप एवं प्रशमन-

दोष	संचय	प्रकोप	प्रशमन
वात	ग्रीष्म	वर्षा	शरद
पित्त	वर्षा	शरद	हेमन्त
कफ	शिशिर	वसन्त	ग्रीष्म

4. षड्ऋतु वर्णन -

आयुर्वेद दर्शन में षड्ऋतु केवल कालिक विभाजन नहीं हैं, अपितु सृष्टि विज्ञान और शरीर विज्ञान के मध्य सेतु का कार्य करती हैं। षड्ऋतुओं की भूमिका मानव शरीर के शक्ति, दोषों की गति और जठराग्नि के नियामक के रूप में अत्यंत मौलिक रूप से महत्वपूर्ण है। यह व्यवस्थित अध्ययन से हमें यह समझने में सहायता करता है कि ऋतुचर्या का पालन करना स्वास्थ्य संरक्षण के लिए अनिवार्य है। षड्ऋतुओं को दो प्रमुख कालखंडों में विभाजित किया गया है-उत्तरायण और दक्षिणायन। जो सीधे तौर पर मनुष्य के शारीरिक शक्ति के हास या वृद्धि को नियंत्रित करते हैं।

आयुर्वेद छः ऋतुओं का वर्णन प्राप्त होता है, जो इन दो कालों में विभाजित हैं। आयुर्वेद में वर्ष को दो कालों उत्तरायण और दक्षिणायन में विभाजित किया गया है जिसके अंतर्गत छह ऋतुएँ आती हैं- शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा, शरद, हेमन्त काल। यथा-

⁷ च. सं. सू. 1/61

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात् षड्दतवः स्मृताः।

शिशिरोऽथ वसन्तश्च ग्रीष्मो वर्षाशरद्धिमाः॥⁸

अर्थात् आदान काल (अग्नि/सूर्य प्रमुख) और विसर्ग काल (सोम/चंद्र प्रमुख) के रूप में दो अयन माने गए हैं। शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद और हेमन्त ये छह ऋतुएं हैं। ऋतुचर्या के अध्ययन का प्रारंभिक बिंदु है, जो ब्रह्मांडीय कारकों (सूर्य और चंद्रमा की सापेक्ष शक्ति) और ऋतुओं के क्रम को परिभाषित करता है, जिससे यह निर्धारित होता है कि शरीर में बल और दुर्बलता कब उत्पन्न होती है।

षड्ऋतुओं का विभाजन:-

आयुर्वेद छः ऋतुओं का वर्णन करता है, जो इन दो कालों में विभाजित है-

काल	ऋतु	दोषों पर प्रभाव	ऋतुओं के नाम
आदान काल (उत्तरायण)	शिशिर, वसंत, ग्रीष्म	शरीर में रूक्षता और दुर्बलता लाता है।	शिशिर (Late Winter), वसंत (Spring), ग्रीष्म (Summer)
विसर्ग काल (दक्षिणायन)	वर्षा, शरद, हेमन्त	शरीर को बल और सिग्धता प्रदान करता है।	वर्षा (Rainy), शरद (Autumn), हेमन्त (Early Winter)

उत्तरायण (आदान काल): -

शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म ये तीन ऋतुएँ उत्तरायण कहलाती हैं, जो मनुष्य के बल का ह्रास करती हैं (आदान काल)। इस काल में सूर्य और वायु अत्यंत तीक्ष्ण, उष्ण और रूक्ष होते हैं, जिससे पृथ्वी के सौम्य गुणों का शोषण होता है। क्रमशः तिक्त (शिशिर), कषाय (वसन्त) और कटु (ग्रीष्म) रस बलवान होते हैं। बल धीरे-धीरे घटता है और ग्रीष्म में अत्यल्प हो जाता है।

दक्षिणायन (विसर्ग काल): -

वर्षा, शरद, हेमन्त ये तीन ऋतुएँ दक्षिणायन कहलाती हैं, जो प्राणियों में बल की वृद्धि करती हैं उसे विसर्ग काल कहते हैं। यह काल सौम्य होता है, चंद्रमा बलवान होता है और सूर्य दुर्बल होता है। क्रमशः अम्ल (वर्षा), लवण (शरद) और मधुर (हेमन्त) रस बलवान होते हैं। बल क्रमशः बढ़ता है और हेमन्त में उत्तम रूप से बढ़ जाता है।

5. स्वास्थ्य सेवा पद्धति -

आयुर्वेद स्वास्थ्य सेवा पद्धति एक प्राचीन और समग्र चिकित्सा प्रणाली है, जिसका उद्देश्य स्वस्थ व्यक्तियों के स्वास्थ्य की रक्षा और रोगी व्यक्तियों के विकारों को दूर कर उन्हें स्वस्थ बनाना है। इसमें शरीर, मन और आत्मा के संतुलन को बनाए रखना महत्वपूर्ण माना जाता है। आयुर्वेद के चिकित्सा सिद्धांतों में तीन दोष (वात, पित्त, कफ),

⁸ अष्टांगहृदय, तृतीय अध्याय, श्लोक 1, पृष्ठ- 42

त्रिगुण, पंचतत्त्व और अग्नि (पाचन अग्नि) शामिल हैं, जिनका संतुलन स्वास्थ्य बनाए रखने और रोगों को ठीक करने के लिए आवश्यक है। आयुर्वेद जीवन का विज्ञान है जो न केवल बीमारी का उपचार बल्कि उसका निवारण भी करता है। यह शरीर, मन, इन्द्रिय और आत्मा के समन्वय को स्वस्थ रखने की बात करता है।

उपसंहार -

आधुनिक दिनचर्या और स्वास्थ्य सेवा पद्धति में आयुर्वेद दर्शन की भूमिका न केवल उपचारात्मक है, अपितु मूल रूप से रोग निवारक और जीवनशैली नियामक भी है। दिनचर्या ब्रह्म मुहूर्त में उठना, अभ्यंग, व्यायाम सीमा और ऋतुचर्या के कठोर नियम आधुनिक जीवन की अनियमितताओं को संतुलित करने के लिए एक वैज्ञानिक रूपरेखा प्रदान करते हैं। त्रिदोष सिद्धांत और वेगों के अप्रेरण का सिद्धांत आधुनिक रोगों के मूल कारणों को समझने और उन्हें नियंत्रित करने के लिए आयुर्वेद दार्शनिक उपचार प्रदान करता है। आयुर्वेद अपनी सुदीर्घ ज्ञान परम्परा और 'हिताहितं सुखं दुःखं आयुस्तस्य हिताहितम्' जैसे सर्वांगीण दृष्टिकोण के कारण एक ऐसी जीवन पद्धति का मार्ग प्रशस्त करता है, जहाँ व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लक्ष्यों को एक निरोगी शरीर के माध्यम से प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार, आयुर्वेद का दर्शन केवल चिकित्सा इतिहास का विषय नहीं, अपितु सार्वभौमिक और शाश्वत स्वास्थ्य विज्ञान है।

ग्रन्थसूची -

1. शास्त्री, पं काशीनाथ पाण्डेय. चरकसंहिता. वाराणसी: चौखम्भा भारती अकादमी.
2. शास्त्री, अम्बिकादत्त. सुश्रुतसंहिता. वाराणसी : चौखम्भा संस्कृत संस्थान.
3. झा, चंद्रभूषण. आयुर्वेदीय रसशास्त्र. वाराणसी : चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन.
4. यादव, दीपक (प्रेमचंद). आयुर्वेद क इतिहास. वाराणसी : चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन.
5. पांडेय बौद्ध आचार्य जैमिनि, अष्टांगहृदयम्, चौखम्भा संस्कृत भवन, 2022.
6. शर्मा, पी.वी. 1996. आयुर्वेद का इतिहास और सिद्धांत.
7. शर्मा, आचार्य वैद्य ताराचन्द्र. आयुर्वेदीय रसशास्त्र. वाराणसी: चौखम्भा संस्कृत भवन.
8. दास, आर. 2018 आधुनिक आयुर्वेदिक चिकित्सा.
9. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) 2019 Global Status Report on Ayurveda.
10. वर्मा. एस. (2020) आयुर्वेद और जीवनशैली रोग.